मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भाव

डॉ0 आर0पी0 वर्मा,

असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र

मैथिलीशरण गुप्त अत्यंत व्यापक दृष्टि संपन्न रचनाकार है। जीवन में जितनी भिन्न विभिन्न स्थितियॉ और परिस्थितियॉ संभव हैं उनमें अधिकांश को गुप्त जी ने अपने काव्य का विषय बनाया है। आचार्य शुक्लजी का कथन है, ''पूर्ण भावुक वे ही हैं जो जीवन की प्रत्येक स्थिति मे मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें और उसे श्रोता या पाठक के सम्मुख अपनी शब्द शक्ति द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें।'' इस दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त पूर्ण भावुक की कोटि में आते है। निश्चय ही उनकी भाव परिधि बहुत व्यापक है। व्यापकता की दृष्टि से आधुनिक साहित्यकारों में प्रेमचंद के अतिरिक्त और कोई भी मैथिलीशरण गुप्त के समकक्ष नहीं है।

काव्य में भाव का संबंध वस्तु या वर्ण्य–विषय से है, जबकि कला का संबंध आकार या शैली से है। वस्तु और आकार एक दूसरे के पूरक हैं। कोई वस्तु आकार हीन नहीं हो सकती और न आकार वस्तु से अलग हो सकता है। फिर भी दोनों में भाव पक्ष ही सर्वमत से अपेक्षाकृत अधिक महत्वशाली है। दोनो में आत्मा और शरीर का संबंध है। प्रथम साध्य है तो दूसरा साधन है।

भाव काव्य के आधार शिला है। मनुष्य के हृदय में बाह्य जगत की संवेदनाओं के कारण जो विकार उठते हैं वे मिलकर भाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं। इस दृष्टि से भाव को बाह्य जगत के संस्पर्श से मानव मन में उठने वाली प्रतिक्रिया कहा गया है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक का भी यही मत है। आचार्य शुक्ल ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ''प्रत्यय बोध अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति, इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम भाव है। इस प्रकार ''वेगयुक्त प्रवृत्ति'' के उत्तेजन से वेगयुक्त कर्मो की प्ररेणा भाव है।

सुख और दुख। शास्त्रीय शब्दावली में इन्ही को रोग और द्वेष कहा गया है। ये राग–द्वेष ही आलम्बन भेद से विभिन्न रूप धारण करते हैं। जैसे राग श्रेष्ठ के प्रति सम्मान या श्रद्धा का, समान के प्रति प्रीति का तथा हीन के प्रति करूणा का रूप धारण कर लेता है। उसी प्रकार द्वेष, अधिक बलवान के प्रति भय में, समबल के प्रति क्रोध में तथा हीनबल के प्रति दर्ष में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार मानव मन के सभी भाव सुख और दुख दोनों में ही समर्पित हो जाते है।

सामान्यतः काव्यशास्त्रियों ने बयालिस भावों का उल्लेख किया है। इनमें नौ को स्थायी और शेष तैतीस कों संचारी भाव माना गया है। आचार्यो ने स्थिर मनोवेगों–रति, हाल, विस्मय, उत्सा, क्रोध, जुगुप्सा, भंय, शोक और निर्वेद को स्थायी की संज्ञा दी है जबकि चिंता, मोह स्मृति, धृति, ब्रीड़ा आदि अपेक्षया अस्थिर भावों को संचारी के नाम से अभिहित किया गया है।

जिस कवि के काव्य में सृष्टि के विस्तृत प्रांगण से जितनी अधिक वस्तुएं गृहीत होती हैं वह उतना ही महान कवि होता है। वास्तव में कवि के महत्ता निर्धारण की एक कसौटी उसके द्वारा स्वीकृत क्षेत्र की व्यापकता और विस्तार हैं, क्योकि काव्य में मनुष्य से लेकर कीट–पतंग, वृक्ष,

नदी, पर्वत आदि सृष्टि का कोई भी पदार्थ आलम्बन बन सकता है। गुप्त जी के आलम्बनों में अपार वैविध्य है। उन्होने चेतन–अचेतन, क्षुब्द–विराट, मानव–दानव, पशु–पक्षी, शुभ–अशुभ, राजा–रंक सभी को समस्त विभिन्नता के साथ अपनाया है।

काव्य में नायक–नायिका का चित्रण चिरंतन विषय है। इसमें भी मुख्य आधार नायिका है, जिसका विशद विवेचन काव्य में हुआ है। इस संदर्भ में गुप्तजी की नायिका का सहज सौंदर्य दृष्टव्य है :–

कनक लतिका भी कमल सी कोमला,

धन्य है उस कल्प–शिल्पी की कला।

छलकता आता अभी तारूण्य है,

आ गुराई से मिला आरूण्य है।

इस सहज चित्रण से शास्त्रीय का आग्रह नहीं है। यह तो संभ्रांत कुल की नायिका का अंकन है।

पुरूषों में राम गुप्त जी आराध्य हैं। उनके सौन्दर्य, शक्ति और शील समन्वित रूप का उन्होने बड़ी उमंग से बखान किया है। 'सिद्धराज' ने जयसिंह के धीरौदात्य के दर्शन किए जा सकते है :–

पीन वृष–स्कंध, क्षीण सिंह–कटि, साहसी,

दीर्घ हस्ति–हस्त, मानो पशुता के पुण्य की

देव साधना का वह पुण्य नर क्षेत्र था।

इसी प्रकार अनुकूल नायक नन्द के विषय में यशोदा की उक्ति यान देने योग्य है :–

मेरे पति कितने उदार हैं, गद्‌गद हैं यह कहते

रानी सी रखते हैं मुझको, स्वयं सचिव से रहते।

कवि ने षट्‌पद से क्षुद्र जीव की क्रीड़ाओं में भी मोहन भाव काा चित्रण किया है। मधुकर के साथ ही तुरंग और कुंजन का गीत चित्र कितना मोहक बन पड़ा है :–

धरा को धसका का भातँग

बढ़े दिखलाकर निज गति–रंग

उड़ाकर उसकी धूत–तुरंग

चले ज्यों चपल अपांग सभंग।

इसी प्रकार पक्षियों के मानवीकृत व्यापारों का सौंदर्य भी मनोहारी रूप से चित्रित हुआ है। मनुष्य आज तक पक्षियों का तमाशा देखता आता है। किन्तु कुशल कवि ने पंचवटी के पक्षियों को ही मानव अभिनीत नाटक का प्रेक्षक बना दिया है वहॉ अभिनेता है सीता, लक्ष्मण और शूर्पणखा।

काव्य मे मूर्त और सचेतन ही नहीं अमूर्त भावनाएं और अचेतन पदार्थ भी आलम्बन स्वरूप ग्रहण किया गए है। 'वनवैभव' में सरोवर का वर्णन कितना सटीक बन पड़ा है :–

उसी वन में था तक तड़ाग,

जहाँ उड़ता था पदम पराग।

यहाँ का हरा भरा भू–भाग,

आप उपजाता था अनुराग।

चौखटे में ज्यों हरे जड़ा,

धरा पर हो सुर मुकुट पड़ा।

कवि ने निष्प्राण को कहीं कहीं सप्राणता प्रदान की है। जैसे साकेत की 'कही सहज तरू तले कुसुम शय्या बनी' आदि पक्तियां देखी जा सकती है। कहीं कहीं तो गुप्तजी ने अमूर्त और अरूप को भी आलम्बन के रूप में ग्रहण किया है यथा

प्रेम भूख नींद ही भुलाता हुआ आता है।

.....

जो संकोच घटता है परिचय होने से

हाय! वही बढ़ता है मुझमें न जाने क्यों?

यहां प्रेम और संकोच दोनों ही अमूर्त है, किन्तु उनका चित्रण मूर्तवत् हुआ है। इस प्रकार कवि का आलम्बनगत वैविध्य प्रभावशाली बन गया है। काव्य में जो रति आदि स्थायी भावों को उद्दीपित करते हैं–उनको आस्वाद योग्यता बढ़ाते है, वे उद्दीपन विभाव कहलाते है। उद्दीपन दो प्रकार के होते है–पात्रस्थ और बाह्य। पात्रस्थ में आलम्बन की चेष्टाएं आती है। ये सभी रसों में हुआ करती हैं। परन्तु अन्य परिस्थितियों का विधान कम दिखाई देता है। पात्रस्थ उद्दीपन रूप में उर्मिला की चेष्टाओं को लिया जा सकता है।

सिमिट सी सहसा गई प्रिय की प्रिया

एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।

यहॉ उर्मिला की ''गति, स्थिति आदि व्यापारों तथा मुख नेत्रादि की चेष्टाओं की विलक्षणता से लक्ष्मण तो अभिभूत हो गए है। अतः उस अपांग में कितना तीक्ष्ण आकर्षण रहा होगा।

इसी प्रकार भीम और हिडिम्ब का घोर युद्ध है। उसमें हिडिम्ब का अतुल पराक्रम, उसकी प्रचण्डता और अपनी बहन हिडिम्ब को एक ओर धकेलना तथा 'व्यर्थ होगा भागना' से व्यजित पांडुओं को धमकी आदि उद्दीपन है।

राक्षस बहन को हटाके भिड़ा भीम से,

कौशल में बल में वे दोनों थे उसी–मन्से।

लड़–लड़ जाते क्रुद्ध गंडकों से मुंड थे,

टांगे मारते थे मत्त वारणों के शंड थे।

इस प्रकार वीर के उद्दीपन में पर्याप्त वैभिन्न है। भावों का संबंध रसों से है। इसीलिए भारतीय काव्यशास्त्र में भाव की चरम परिणति को रस कहा जाता है। रसों की संख्या सामान्यतः नौ मानी जाती है। इसमें भी श्रृंगार, वीर, शांत और करूणा का संबंध जीवन के अधिक प्रबल और उपयोगी भावों से है। इसीलिए वे प्रमुख है। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में इन चार रसों का विशेष चित्रण हुआ है जबकि अन्य पांच का साधारण चित्रण हुआ। इस दृष्टि से उनके काव्य में सभी रसों का समावेश देखा जा सकता है।

श्रृंगार रस

गुप्तजी के साकेत (प्रथम, नवम और दशम सर्ग) 'रंग में भंग' और 'यशोधरा' काव्य में रति भाव अथवा श्रृंगार रस की व्यंजना के अनेक स्थल देखे जा सकते हैं। साकेत के प्रथम सर्ग में लक्ष्मण–उर्मिला के सुखी दाम्पत्य का वर्णन है। नव दम्पत्ति की मार–तरल विनोद–वार्ता ही रस परिणति में समर्थ है। किन्तु कवि ने सर्वत्र मर्यादा का ध्यान रखा है। यद्यपि उसमें आलिंगन तक का स्पष्ट चित्रण हुआ है :–

हाथ लक्ष्मण ने तुंरत बढ़ा दिए,

और बोले–एक परिरंभण प्रिये।

सिमिट सी सहसा गई प्रिय की प्रिया

एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।

किन्तु घात में उसे प्रिय ने किया,

आप ही फिर प्राप्य अपना ले लिया।

किन्तु यहॉ संभोग पर गार्हस्थ का पावन आवरण झिलमिला रहा है।

संयोग के अतिरिक्त रति का सघनता और व्यापकता की वास्तविक व्यंजना उसके दूसरे रूप वियोग अथवा विप्रलम्भ में ही सम्भव है। संयोग में व्यक्ति घर की चहारदीवारी में ही सीमित रहता है किन्तु वियोग में व्यक्तित्व का

असीम विस्तार हो जाता है। सीता के वियोग में राम पशु–पक्षियों तक से वार्तालाप करना चाहते है।

हे खग, मृग हे माकुर स्त्रेनी।

तुम देखी सीता मृग–नैनी।।

वियोग श्रृंगार के चार भेद होते हैं – पूर्व राग, मान, प्रवास और करूण। इनमें प्रवास जन्य विरह ही वास्तविक विरह है, उसी में सर्वाधिक तीव्रता रहती है। इन चारों भेदों के तल में रति का एक सूक्ष्म तंतु अनुस्यूत रहता है। गुप्तजी के काव्य में वियोग के ये सभी भेद उपलब्ध है किन्तु अधिकता प्रवास विप्रलंभ की ही है। यथोधरा से उसका एक उदाहरण लिया जा सकता है :–

उनका यह कुंज–कुटीर बडी झड़ता उड़ अंशु अवीर जहॉ,

अलि, कोकिल कीर शिखी सब हैं सुन चातक की रट पीव कहाँ?

अब भी सब साज–समाज वही तब भी सब आज अनाथ यहाँ,

सखि, जा पहुॅचे सा–संग कहीं यह अन सुंगा समीर वहाँ?

यहॉ गौतम के प्रति यशोधरा का हृदयगत रति–भाव कोयल, भ्रमर, लता मण्डप आदि से उद्दीपत, वितर्क, औत्सुक्य आदि से परिपुष्ट तथा विवर्णता आदि से परिव्यक्त होकर वियोग की तीव्रता और सघनता को प्रकट कर रहा है।

इसी प्रकार विप्रलम्भ के अन्य प्रकार भी रंग में भेद जयद्रथवा और साकेत में देखे जा सकते है।

वीर रस

वीर रस का प्रादुर्भाव अत्यंत उत्साह के होता है। आलम्बन उद्दीपन आदि की दृष्टि से इसके चार मुख्य रूप से हो सकते है। उन्हीं के अनुसार वीर रस के भी चार भेद हो सकते है। युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर। इनमें सर्वप्रमुख युद्धवीर ही है। गुप्तजी ने युद्धवीर का बहुत कम वर्णन किया है। अतः उनके काव्य में युद्ध का चित्रण न मिलकर कथन अधिक है, जैसे :–

कर्ण था अटूट सार–धारा का प्रयात–सा,

सामने जो आया वही डूबा–वहॉ उसमे।

आशा भी किसी के बचने की रही किसकों?

सीमा छोड़ मानों महा सिंधु वहॉ उमड़ा।

फिर भी युद्धवीर का सर्वथा अभाव नहीं है। थोड़े प्रयास से अनेक अच्छे उदाहरण मिल सकते है।

करूण रस

गुप्त जी के काव्य में करूण रस की ही प्रधानता है। उनका काव्य करूण रस से भरा पड़ा है। जयद्रथ वा से एक उदाहरण दृष्टव्य है :–

मैं हूँ वही जिसको किया था विधि–विहित अर्द्धांगिनी,

भूलो न मुझको नाथ, हूँ मैं अनुचरी चिरसंगिनी।

जो अंग रागांकित–रूचित–सित–सेज पर थी सोहती,

शोभा अपार निहार जिसकी मैं मुदित मोहती,

तब मूर्ति क्षत–विक्षत वही निश्चेष्ट अब भू पर पड़ी।

बैठी तथा मैं देखती हूँ, हाय री छाती कड़ी।

हे जीवितेश! उठो, उठो, यह नींद कैसी घोर है।

इसी प्रकार 'नहुष', 'साकेत' आदि रचनाओं में भी शोक की करूण के रूप में चरम परिणीत हुई है।

शान्त रस

सहृदयों के हृदय में वासना–रूप में स्थित निर्वेद विभाव, अनुभाव और संचारी से शांत रस का रूप धारण करता है। पंचवटी के निम्नलिखित पद्य में शांत का सौंदर्य देखा जा सकता है :–

शुद्ध सिद्धान्त वाक्य पढ़ते हैं शुक सारी भी आश्रम के,

मुनि कन्याएं यश गाती हैं क्या ही पुण्य पराक्रम के।

अहा! आर्य के विपिन–राज्य में सुख पूर्वक सब जीत हैं,

सिंह और मृग एक घाट पर आकर पानी पीते हैं।

यहाँ 'स्वच्छ शिला' पर बैठे हुए 'धीर–वीर निर्भीकमना' लक्षण पंचवटी की शोभा निहार रहे है। पंचवटी यहां आलम्बन है, लक्ष्मण आश्रय हैं। पंचवटी का शांत वातावरण, शुक सारिका का 'शुभ सिद्धांत वाक्य' पढ़ना सिंह और मृग का एक घाट पर पानी पीना आदि उददीपन है। एकान्त वातावरण में रमना, संसार से परांगमुख होना अनुभव है। हर्ष, मति, आदि संचारी है। इन सभी अवयवों से पोषित शम रस रूप में व्यंजित है।

रौद–रस

गुप्तजी ने रौद्र रस का भी अपने काव्य में प्रचुर चित्रण किया है यथा –

अरे पापी तुझको तो मैं

व्योम में रसातल में खोजकर मारता

भाग्य से तू भू पर ही मिल गया मुझकों।

यहां भीम और दुःशासन आश्रय आलम्बन है। दुःशासन के पूर्व कृत्य उद्दीपन तथा भीम की आकुंचित भौंहे और फूले हुए नथने अनुभाव हैं। दुःशासन पर प्रहार, कठोर भाषण आदि अनुभाव के अंतर्गत है। उग्रता और स्मृति आदि संचारी हैं। इस प्रकार रोद्र का सावयन निरूपण हुआ है।

हास्य रस

मैथिलीशरण गुप्त हास्य–प्रिय कवि हैं। वे गंभीर से गंभीर परिस्थति में भी हास्य का अवसर निकाल लेते है। उदाहरणार्थ सात्यकि के कहने पर कि कृष्ण और अर्जुन मुझे आपकी रक्षा के लिए छोड़ गए है तो युधिष्ठिर का यह कथन हास्य की सृष्टि करता हैः–

सीता के समीप जैसे लक्ष्मण को छोड़ के,

माया मृग मारने गय थे राम वन में।

''आश्चर्यजनक विचित्र वस्तुओं को देखने से अदभुत रस व्यक्त होता है। इस दृष्टि से गुप्त जी के काव्य के अद्भुत का चित्रण बहुत कम हुआ है। यत्र–तंत्र प्रयत्न करने पर गुप्त करने पर एक दो उदाहरण मिल सकते हैं। यही स्थिति वीभत्स और भक्ति रस की है।

रसाभाष

अनुचित प्रवृतिमूलक रस ही रसाभास के नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें अपात्र अथवा अनुपयुक्त पात्र के प्रति किसी भाव की परिणति ही रसाभास के रूप में अभिशंसित होती है। स्पष्टतः रसाभास अनुचित, अनैतिक और अनुपयुक्त संबंधो–संसर्गो पर आधृत है। वैसे तो अनौचित्य और अनैतिकता की सभी विचारक मनीषियों ने निंदा की है। फिर भी व्यापक जीवन को काव्य का विषय बनाने वाला कवि अनुचित और अनैतिक भाव तरंगों से अछूता नहीं रह सकता। इसी से गुप्त जी के काव्य में भी

रसाभास के उदाहरण सहज ही मिल जाते हैं, जैस –

हे अनुपम आनंद मूर्ति, कृशतनु सुकुमारी,

बलिहारी यह रूचिर रूप की राशि तुम्हारी।

क्या तुम हो इस योग्य, रहो जो बनकर चेरी,

सुध बुध जाती रही देखकर तुमको मेरी।

इन दृगबाणों से विद्ध यह मन मेरा जब से हुआ,

है खान–पान शयनादि सब विष समान तब से हुआ।

यहॉ सैरन्ध्री नाम धारिणी द्रौपदी के प्रति कीचक के वचन प्रस्तुत हैं।

इसमें सामान्यतः रस के सभी अवयव उपस्थित है। द्रौपदी–कीचक आलंबन आश्रय है। द्रौपदी का सौंदर्य और सौकुमार्य तथा एकान्त स्थान उद्दीपन है। हर्ष, आवेग तथा 'क्या तो इस योग्य रहो जो बनकर चेरी' से व्यंग्य वितर्क आदि संचीरी है। टकटरी लगाकर द्रौपदी को देखना तथा मधुर वचन कहना अनुभाव है परन्तु यह सब अनौचित्यपूर्ण है पर स्त्री के प्रति प्रेम रूप अनैतिक कार्य है। अतः यह श्रृंगार रस न होकर उसका रसाभान है।

श्रृंगार के समान अन्यान्य रसों में भी रसाभास होते हैं। किन्तु काव्य में अधिकतर श्रृंगार, रौद और हास्य के ही रसाभास का आलेखन होता आया है। कहीं–कहीं वीर का भी रसाभास देखने को मिल जाता है। इसी प्रकार रौद्र का रसाभास देखा जा सकता है :–

दण्ड, आहो दण्ड, कैसा दण्ड?

पर कहॉ उद्दण्ड ऐसा दण्ड?

इस प्रकार गुप्तजी के काव्य में जीवन के अनन्त विस्तार में से अनुपयुक्त, अनैतिक, अभिशंसनीय और अवांछनीय परिस्थितियॉ भी गृहीत हैं तथा रसाभास के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं।

'विभाग, अनुभाव तथा संचारी के संयोग से रस निष्पत्ति होती है – किन्तु जहॉ इनमें से किसी के अभाव अथवा अपूर्ण के कारण रस निष्पन्न नहीं होता, वहॉ रस दशा के स्थान पर भाव दशा होती है। इस प्रकार शास्त्र में अपुष्ट रस को ही भाव कहा गया है। यथा–

आया एक नवयुवक, उसने गुरु को किया प्रमाण।

पर विरक्ति से नहीं भक्ति से अपना ध्यान समेट,

रखी उसने गुरु चरणों में मंजुल मधु भेंट।

यहॉ अल्हड़ युवक वनचर एकलव्य और गुरु द्रोणाचार्य की प्रथम भेंट का उल्लेख है। इसमें नागरिक शिष्टाचार की कृत्रिमता नहीं है।

रस चर्वणा में सक्षम न होने पर भी गुरु विषयक रति का भोला और मोहक चित्रण है।

भावोदय

गुप्तजी के काव्य में भाव दशा के असंख्यक उदाहरण मिलते हैं। भाव–दशा के साथ ही गुप्तजी की रचनाओं में भावोदय का चित्रण भी प्रचुर मात्रा में हुआ है, यथा –

गए लौट भी वे आवेंगे,

कुछ अपूर्व–अनुपम लायेंगे,

रोते प्राण उन्हें पावेंगे,

पर क्या गाते–गाते?

यहॉ प्रथम और द्वितीय पंक्ति में मति और तीसरी पंक्ति में हर्ष की ध्वनि है। परन्तु अंतिम पर आते ही उनका तिरोभाव और विषाद का उदय होता है। इस उदय में ही अधिक चमत्कार होने से ''भावोदय'' है।

भाव–शान्ति

जहॉ क्रोध और उग्रता की शान्ति का आविर्भाव हो, वहॉ भाव–शान्ति होती है, यथा –

खड़ी है मॉ बनी जो नागिनी यह,

अनार्या की जनी हत भागिनी यह,

अभी विषदंत इसके तोड़ दूँगा,

नरों को तुम, तभी मैं शान्त हूँगा।

बने इस दस्युजा के दास हैं जो

पिता हैं, वे हमारे या कहूँ क्या?

कहो हे आर्य! फिर भी चुप रहूँ क्या?

यहॉ राम–लक्ष्मण का वार्तालाप है। राम रोषविष्ट अनुज को समझा रहे हैं। क्रोध और उग्रता की जगह शान्ति तथा शम का आविर्भाव है। इससे सारा सौंदर्य क्रोध और उग्रता की शान्ति में ही निहित है। अतः यहॉ भाव शान्ति है।

भाव–संधि

सम चमत्कारक दो भावों की योजना को भाव संधि कहा जाता है। निम्नलिखित अवतरण मे दो तुल्यबल भावों का मणिकांचन संयोग देखा जा सकता है :–

पुष्ट हो जिसके अलौकिक अन्न नीर समीर से,

मैं समर्थ हुआ सभी विध रह विरोग शरीर से।

यद्यपि कृत्रिम रूप में यह मातृ भूमि समक्ष है,

किन्तु लेना योग्य क्या उसका न मुझको पक्ष है।

उपर्युक्त उद्धरण में मातृ–भूमि विषयक रति और उसकी रक्षा का उत्साह इन समान चमत्कारी दो भावों के सम्मिलन से भाव–संधि की प्रतिष्ठा हुई है।

अनुभाव–चित्रण

रस के विभिन्न अवयवों में अनुभाव की भी गणना होती है। अनुभावों के द्वारा रस परिव्यक्त होता है। अनुभाव के चार प्रकार माने जाते हैं–कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्विक। इन चारों प्रकारों में स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर भंग आदि सात्विक अनुभाव ही प्रमुख एवं सर्वाधिक प्रभावशाली है। यहॉ स्तम्भ का एक उदाहरण दृष्टव्य है :–

रानकदे आप न थी मानो इस लोक में,

मानों एक मौन मूर्ति मंदिर में बैठी थी,

होकर तटस्थ शोक और हर्ष दोनों से।

व्यर्थ परिचारिकाएं करती प्रतीक्षा थीं,

वइ इस जन्म की समाधि लिए बैठी थी।

यहॉ पति मृत्यु से विषादग्रस्त रानकदे का शरीर चेष्टाहीन है–अंग संचालन एक दम अवरूद्ध है। अतः करूण तरल स्तम्भ चित्र है? इसी प्रकार स्वेद, रोमांच, स्वर–भंग आदि सात्विक भावों के उदाहरण भी यत्र–तंत्र प्राप्य है।

संचारी भाव

रस चर्वणा में जो भाव सक्षम होता हैं। वे स्थायी कहलाते हैं शेष अन्य अस्थायी होते हैं। इन अस्थिर भावों को ही संचारी या व्यभिचारी भाव कहा जाता है। संचारी भाव अन्य भावों को रसावस्था तक पहुँचाने में सहायक तो होते हैं किन्तु स्वतः रस परिणति में समर्थ नहीं होते। संचारी असंख्य है। उन्हें संख्याबद्ध करना असंभव है। फिर भी आचार्यो ने उनकी संख्या तैंतीस मानी है। उनमें भी शारीरिक स्थूलता का प्राधान्य होने के कारण मरण, अपस्मार, व्याधि आदि 'संचारी

भाव' नहीं है। गुप्त जी के काव्य में से संचारी भाव के अनेक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, यथा –

क्षत्रणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही –

सज्जित करें पति–पुत्र को रण के लिए जो आप ही।

अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे, सच जानिए,

मत जाइए सम्प्रति समर में, प्रार्थना यह मानिए।

यहॉ उत्तरा चक्रव्यूह भेदन के लिए जाने को उद्यत अभिमन्यु को रोकना चाहती है। अतः यहॉ शंका संचारी की व्यंजना है।

इसी प्रकार असूया, दैन्य, ब्रीड़ा, विषाद, उग्रता आदि संचारी भावों के अनेक उदाहरण गुप्तजी के काव्य में देखे जा सकता है। कुछ अन्य संचारियों में विदग्धता, नैराश्य की झलक भी मिलती है।

स्पष्टतः कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्तजी के काव्य में सभी रसों एवं प्रधान भावों को निरूपण हुआ है। संचारी जैसे गौण भाव भी उनके काव्य में चित्रित हुए है। आलम्बनगत और उद्दीपनत वैविध्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता हैं। इससे स्पष्ट है कि गुप्तजी का भाव क्षेत्र अत्यंत विशद, विशाल और व्यापक है। इस प्रकार गुप्तजी के भाव क्षेत्र का अपरिमित विस्तार पाठक को विस्मय–विमुग्ध करने वाला है।

संदर्भ

- ✓ आचार्य शुक्ल गोस्वामी तुलसीदास, पृ0 73
- ✓ गुलाबराय सिद्धांत और अध्ययन, पृ0 125
- ✓ लक्ष्मी नारायण सुांशु जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, पृ0 3
- ✓ T.H.RIBOT The Psychology of Emotions, Edition 1897
- ✓ आचार्य शुक्ल रसी मीमांसा, पृ0 168
- ✓ सुखानुशयी रागः / दुखानुशयी द्वेषः / (पातंजल योग दर्शन–2–7,8)
- ✓ डॉ0 नगेन्द्र रस सिद्धांत, पृ0 227
- ✓ मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ0 19
- ✓ सिद्धराज, पृ0 21
- ✓ द्वापर, पृ0 14
- ✓ वन–वैभव, पृ0 6
- ✓ वन–वैभव, पृ0 14
- ✓ सिद्धराज, पृ0 99
- ✓ पं0 रामदहिन मिश्र काव्य दर्पण, पृ0 55
- ✓ मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृ0 30
- ✓ हिडिम्बा, पृ0 23
- ✓ साकेत पृ0 30
- ✓ यथोधरा, पृ0 44
- ✓ सेठ कन्हैयालाल पोद्दार काव्य कल्पद्रुम, पृ0 215
- ✓ मैथिलीशरण गुप्त जय भारत, पृ0 282
- ✓ रंग में भंग, पृ0 29
  - ○ साकेत, पृ0 320
  - ○ वन वैभव, पृ0 32
- ✓ मैथिलीशरण गुप्त जयद्रथ वध, पृ0 25
- ✓ पंचवटी, पृ0 12
- ✓ जय भारत, पृ0 384
- ✓ युद्ध पृ0 17
- ✓ सैरन्ध्री, पृ0 26

- ✓ यशोधरा, पृ0 25
- ✓ साकेत, पृ0 61
- ✓ रंग में भंग, पृ0 26
- ✓ सिद्धराज, पृ0 71
- ✓ जयद्रथ वा, पृ0 9

Copyright © 2015, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.